SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

गाँधीजी की परिकल्पनाओं का भारतः एक समीक्षा

जितेन्द्र कुमार, पी.–एचडी., इतिहास विभाग
मोलदियार टोला, वार्ड नं.–12, मोकामा, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
जितेन्द्र कुमार, पी.–एचडी.
E-mail : jitendrakumar153198@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 28/06/2025
Revised on : 29/08/2025
Accepted on : 08/09/2025
Overall Similarity : 00% on 30/08/2025

शोध सार

गाँधीजी ने भारत में राम–राज्य की परिकल्पना की थी। यह नाम गाँधी ने स्वयं दिया था और समय–समय पर इसकी व्याख्या भी की थी। गाँधीजी के अनुसार रामराज एक ऐसा राज होगा जिसमें लोग कल्याण की भावना प्रबल होगी। इसमें सामाजिक, विषमता, अस्पृश्यता का नामो–निशान नहीं होगा। गाँधीजी न्यूनतम शासन के पक्ष में थे। उनके अनुसार "That Government is the best which governs the least" अर्थात् न्यूनतम शासन करने वाला शासन तंत्र ही सर्वोत्तम होता है। एक स्थान पर उन्होंने कहा था, 'मैं राज्य की शक्तियों में वृद्धि को शंका की दृष्टि से देखता हूँ। राज्य की बढ़ती हुई शक्ति ऊपर से तो जनता की भलाई करती हुई नजर आती है किन्तु वास्तव में इससे समाज को बहुत हानि पहुँचती है। व्यक्ति के विकास में राज्य की बढ़ती हुई शक्ति बाधक होती है।'

मुख्य शब्द

राम राज्य, अस्पृश्यता, स्वराज, ट्रस्टीशिप, बुनियादी शिक्षा, स्वदेशी.

भूमिका

गाँधीजी रामराज की कल्पना करते समय मात्र राज्य की शक्ति अथवा अस्पृश्यता को ही विचार का केन्द्र बिन्दु नहीं बनाते थे। उनके विचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत था।। वे छोटे से छोटे बिन्दु पर भी व्यापक रूप से विचार करते थे जिन्हें निम्न बिन्दुओं में उजागर किया जा सकता है:

स्वराज

गाँधीजी देश के विकास को गाँवों से प्रारम्भ करना चाहते हैं। उनके अनुसार देश के विकास का प्रथम सूत्र गाँव है। गाँव में स्वशासन प्रणाली को विकसित कर उसे

पूर्णरूप से सक्षम बनाना ही गाँधीजी के अर्थों में स्वराज था। गाँधीजी के शब्दों में 'स्वराज एक पवित्र और वैदिक शब्द है। इसका अर्थ स्वशासन और स्व–अनुशासन होता है जो स्वतंत्रता से भिन्न और विस्तृत है। स्वराज एक पूर्ण गणतंत्र है जो मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूरी तरह सक्षम होता है। गाँधीजी का सत्ता के विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त भी इसी स्वराज में निहित था। वे ग्राम पंचायतों को अपने गाँवों का प्रबन्ध और प्रशासन का अधिकार सौंप देने की वकालत करते थे। राष्ट्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों के ग्राम स्तर पर हस्तक्षेप की वे खिलाफत करते थे। सभी गाँव आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी तथा राजनीतिक दृष्टि से स्वशासन के पूर्ण अधिकार से युक्त हो। ग्राम्य स्वराज के संबंध में अपनी परिकल्पना को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है, 'मेरे ग्राम स्वराज का आदर्श यह है कि प्रत्येक गाँव एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह पड़ोसियों पर निर्भर न रहे। प्रत्येक गाँव के लिए पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए कपास की फसल उत्पन्न करना। पशुओं के लिए गोचर भूमि तथा लोगों के खेलकूद एवं मनोरंजन के लिए खेल के मैदान की व्यवस्था करना भी ग्राम पंचायत का कार्य होगा। गाँव का प्रत्येक कार्य यथा सम्भव सहकारिता के आधार पर किया जायेगा।'[1]

ट्रस्टीशिप

ट्रस्टीशिप का मूल आधार यह है कि किसी व्यक्ति का उसकी संपत्ति पर भी गैर जिम्मेदाराना, अनियंत्रित और पूरा अधिकार नहीं है। किसी भी धनी व्यक्ति का सम्पत्ति पर तभी तक अधिकार है जब तक उसे समाज का विश्वास मिला हुआ है, किन्तु तब भी वह पूरी की पूरी सम्पत्ति को निजी भोग के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता। वह उतनी ही सम्पत्ति का निजी भोग कर सकेगा जितनी देश के अन्य लोगों को प्राप्त है। गाँधीजी मानते थे कि किसी की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति का अधिकार उसकी संतति को मिलना अमानवीय और असामाजिक है। सम्पत्ति और मानव उपलब्धियों का सभी रूप प्रकृति अथवा समाज की देन है। अतः उसका प्रयोग किसी व्यक्ति द्वारा निजी तौर पर किया जाना समाज के लिए अन्यायपूर्ण है।[2]

गाँधीजी के इन विचारों के पीछे पूंजीवाद की वे बुराईयाँ थी जिसे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में बहुत निकट से देखा था। अनियंत्रित निजी सम्पत्ति धनी को गरीबों का शोषण के लिए उत्प्रेरित करती है जो इन दो वर्गों की खाई को बढ़ाती है इसीलिए वे पश्चिमी देशों के पूंजीवादी लोकतंत्र को पसंद नहीं करते थे जहाँ शोषण, उत्पीड़न, सम्पत्ति का केन्द्रीकरण और असमानता जैसी बुराई अपने चरम पर थी इसीलिए उन्होंने कहा 'भारत का भविष्य उस खूनी रास्ते पर चलने से नहीं सुधरेगा जिसपर चलकर आज पश्चिमी जगत थका सा मालूम होता है।[3]

अस्पृश्यता

गाँधीजी सामाजिक समानता के महान हिमायती थे। अस्पृश्यता को वे सम्पूर्ण मानव जाति के लिए कलंक मानते थे। अस्पृश्यता की समस्या के साथ पूर्ण स्वराज की कल्पना असम्भव है। अस्पृश्य जातियों के लिए उन्होंने हरिजन शब्द रचा तथा उनके समीप रहकर समस्या के निराकरण के लिए 1932 में 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की। इस संघ ने अस्पृश्यता निवारण, पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए तथा समानता एवं बंधुत्व की भावना के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किये। हरिजनों के मंदिर में प्रवेश के लिए तथा उनमें शिक्षा के प्रसार के लिए संघ द्वारा किए गए प्रयत्न सराहनीय थे।

गाँधीजी हरिजनों तथा दलितों को हिन्दू समाज का एक अविभाज्य अंग मानते थे। उनकी दृष्टि से सरकार द्वारा इनके लिए किसी भी तरह की अलग या अतिरिक्त व्यवस्था करना हिन्दू समाज को दो वर्गों में बांटने जैसा होगा। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की विफलता के बाद ब्रिटिश सरकार ने सन् 1932 में साम्प्रदायिक अधिनिर्णय की घोषणा की। इस घोषणा द्वारा प्रांतीय विधायिका में मुसलमानों, सिखों, ईसाईयों तथा आंग्ल भारतीय को पृथक प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गयी। महिलाओं को भी प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसी तरह दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था की गयी। गाँधीजी ने इसका विरोध किया और आमरण अनशन पर बैठ गए। पूना में एक समझौता हुआ और डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलितों के पृथक प्रतिनिधित्व की मांग वापस ली गयी। गाँधीजी वास्तव में दलितों को हिन्दू समाज से अलग करके देखना पसंद नहीं करते थे। दलितों को अन्य हिन्दुओं के समान दर्जा देने के वे हिमायती थे किन्तु पृथक आरक्षण पर उनका मत भिन्न था। इस कार्य में उन्हें अंग्रेजी की हिन्दुओं को दो वर्गों में विभाजित करने की चाल समझ में आती है।[4]

बुनियादी शिक्षा

गाँधीजी मनुष्य के शरीर, आत्मा और भावना के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा को आवश्यक मानते थे। साक्षरता शिक्षा का न तो अंत है और न ही शुरूआत। यह एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है। आदर्श शिक्षा जीवन के सभी क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव डालती है ओर शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा भावनात्मक विकास को पूर्णता प्रदान करती है। वर्तमान शिक्षा पद्धति को वे उचित नहीं मानते थे। ऐसी शिक्षा जिसमें बच्चे अपने माता–पिता से दूर होते चले जायें तथा अपने पैतृक व्यवसाय जिसमें उनका जन्म हुआ है, को भूल जाय, को गाँधीजी शिक्षा नहीं अपितु अशिक्षा ही मानते थे। शिक्षा की इस दोषपूर्ण प्रणाली के प्रतिकार के लिए उन्होंने जिस शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा रखी थी वह बुनियादी शिक्षा कहलाई। इस शिक्षा प्रणाली को कार्यरूप देने के लिए अक्टूबर 1937 में शिक्षा से जुड़े वरिष्ठ लोगों तथा शिक्षा शास्त्रियों का एक सम्मेलन वर्धा (महाराष्ट्र) में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा के संबंध में निम्न प्रस्ताव रखे गए – (1) 7 से 14 वर्ष आयु वर्ग के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा, (2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, (3) शिक्षा किसी हस्तकला का केन्द्र बनाकर दी जाय, (4) शिक्षा द्वारा मानवीय एवं राष्ट्रीय गुणों का विकास किया जाय।

गाँधीजी शिक्षा का केन्द्र हस्त कला को बनाने के पक्षधर थे। वास्तव में हस्त कला एक ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति अपनी न्यूनतम दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। किसी व्यक्ति का समाज पर निर्भर रहना वह उचित नहीं समझते थे। उनकी शिक्षा का उद्देश्य लोगों को सर्वोदय की ओर ले जाना था। उनका कहना था, 'बुनियादी शिक्षा शहर और गाँव के सम्बन्धों को स्वस्थ और नैतिकता पूर्ण आधार देगी तथा इस प्रकार वर्तमान सामाजिक सुरक्षा एवं वर्गों के विषाक्त संबंधों की अनेक बुराईयों को दूर करेगी। यह ग्रामों में शनैः–शनैः हो रहे विनाश को भी रोकेगी तथा अधिक न्यायोचित समाज व्यवस्था स्थापित करेगी जिससे साधन और सुविधाओं के मामले में सम्पन्न और विपन्न व्यक्तियों की कृत्रिम भेद मिट सकेगा और प्रत्येक को रोजी–रोटी और स्वतंत्रता का अधिकार मिल सकेगा।[5]

राजनीति और धर्म

गाँधीजी राजनीति को धार्मिक तथा आध्यात्मिक मानते थे। प्रबल धार्मिक प्रवृति ने ही उन्हें राजनीति की ओर खींचा जहाँ उन्होंने अपने धार्मिक विश्वासों–आस्तिकता, ईश्वर में अगाध, श्रद्धा, आत्मबल की प्रधानता, अद्वैत की कल्पना, सर्वत्र चराचर जगत में एक ही सत्ता का व्याप्त होना, अहिंसा, सत्य, प्रेम, अस्तेय, अपरिग्रह आदि सिद्धांतों को लागू किया। उनके अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा लक्ष्य आत्मा का विकास करना है। यह तभी संभव है जब वह अपने को समाज का अंग माने और तदनुसार आचरण करें। इसकी पूर्ति के लिए मनुष्य को राजनीति में सक्रिय होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य के सभी कार्यों में एक मौलिक एकता और अखण्डता होती है इसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में बाँटना संभव नहीं। उदाहरणार्थ, राजनीतिक बुराईयाँ–पराधीनता और इसी से उत्पन्न दुष्परिणाम आत्मा के विकास में बाधक होते हैं। अतः आत्मा के विकास के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करना और संघर्ष करना अनिवार्य है। इसी प्रकार धर्म और राजनीति का गहरा संबंध है जो देश के प्रति अपने कर्तव्यों से अपरिचित है वह धर्म का अर्थ नहीं जानता। उनका कहना था, 'कि आध्यात्मिक एवं धार्मिक नियम एक विशेष क्षेत्र में ही कार्य करते हों यह आवश्यक नहीं, यह जीवन के सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्त होता है, यह आर्थिक, राजनीति और सामाजिक क्षेत्रों में अपना प्रभाव डालता है और गाँधीजी राजनीति को धर्म मूलक, धर्म प्राण तथा सत्य और अहिंसा के धार्मिक सिद्धांतों से ओत–प्रोत और संचालित किया जाने वाला मानते थे। वे राजनीति को धार्मिक क्षेत्र की भांति आध्यात्मिक और पवित्र मानते थे।[6]

साध्य और साधन

गाँधीजी मैकियावेली के सिद्धान्त उद्देश्य की पवित्रता साधनों को पवित्र बना देती है के विपरीत साधन की पवित्रता पर अधिक जोर देते हैं। उनके विचार से जिस प्रकार नीम के बीज से आम का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता उसी प्रकार अपवित्र साधनों से पवित्र उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। देश को अंग्रेजी दासता से मुक्त कराने के लक्ष्य को वे पवित्र लक्ष्य मानते थे किन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा, छल, कपट, लूट एवं

हत्या के मार्ग को अपनाना वे अनुचित मानते थे। उनका कहना था साधन पवित्र होने चाहिए। यदि साधन दूषित और भ्रष्ट होगा तो इससे प्राप्त होने वाला फल भी दूषित और भ्रष्ट होगा। हिंसा के माध्यम से प्राप्त स्वतंत्रता को गाँधीजी अस्वीकारणीय, त्याज्य और हेय समझते थे। सत्याग्रह और अहिंसा को गाँधीजी सर्वश्रेष्ठ साधनों में से मानते थे। सत्य को वे ईश्वर के सर्वाधिक निकट की वस्तु समझते थे।[7]

स्वदेशी

गाँधीजी के चिंतन और दर्शन में मानवीयता और लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों की प्रबलता थी। भारतीयों की राजनीतिक पराधीनता के साथ–साथ वे आर्थिक पराधीनता पर भी चिंतित रहा करते थे। आर्थिक पराधीनता से मुक्ति के लिए उन्होंने स्वदेशी आंदोलन का प्रसार किया। स्वदेशी आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था, 'स्वेदशी हमारे अंतराल की वह भावना है जो कि हमको सुदूर की अपेक्षा हमारे निकटतम पर्यावरण के प्रयोग एवं सेवा के लिए प्रेरित करती है। वे प्रत्येक गाँव को उत्पादकता से जोड़ना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि प्रत्येक गाँव की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं उत्पादन करना चाहिए। इसी संदर्भ में वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण का भी पक्ष लिया करते थे। मशीनों द्वारा किए जाने वाले उत्पादनों की अपेक्षा वे लघु कुटीर उद्योग पर बल देते थे। आर्थिक क्षेत्र में उनके अनुसार यही स्वदेशी है। राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी वे स्वदेशी के पक्षधर थे। अपने देश की राजनीतिक संस्थाओं को अपनाना और उनके विकास में सहयोग देना वे प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य समझते थे। इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में अपने वंशानुगत धर्म का पालन करना तदनुसार आचरण करना ही स्वदेशी है।[8]

निष्कर्ष

गाँधीजी की परिकल्पनाओं का भारत एक आदर्श भारत है। इस संबंध में गाँधीजी का चिंतन भारत ही नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी है। अणु बमों के प्रलयकारी तांडव की संभावना से भयभीत मानव जाति को अहिंसा के मार्ग पर ले जाने की गाँधीजी की चेष्टा प्रशंसनीय है। स्वार्थ और शोषण की राजनीति को धर्म एवं आध्यात्मिकता के साथ जोड़कर उसके शुद्धीकरण का प्रयास गाँधी जैसे महात्मा के लिए ही संभव था। यह बात अलग है कि गाँधीजी के विचारों को भारत में पूर्णरूप से नहीं अपनाया गया, किन्तु राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उनका चिंतन सदैव अनुसरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची

1. चौधरी, सुरेन्द्र (1910) *हिन्द स्वराज और आधुनिकता का प्रश्न, महात्मा गाँधीः सहस्त्राद का महानायक,* (सं.) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 47।
2. गाँधी, एम.के. (1969) *सत्य की आवाज,* खण्ड–5, (प्र.सं. श्रीमन नारायण), शांतिलाल एच. शाह, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
3. गाँधी, एम.के. (1933) हरिजन, 25.10.52, भखदा जेल, महात्मा गाँधी, पुना, पृ. 301।
4. गुहा, रामचंद्र (2024) *गाँधीः अस्पृश्यता का विरोध, भारत छोड़ो आंदोलन और अंतिम क्षण (1931–48),* खण्ड–2, पंग्विन स्वदेश पब्लिकेशन, न्यूयार्क टाइम्स।
5. गाँधी, एम.के. (1953) *टुवर्ड्स न्यू एजुकेशन,* (सं.) भरत कुमारप्पा, नवजीवन मुद्रानालय, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
6. गाँधी, एम. के. (1994) *संपूर्ण गाँधी वांगमय,* नवजीवन ट्रट, अहमदाबाद एवं प्रकाशन विभाग, दिल्ली, खंड–13, पृ. 215।
7. गाँधी, एम. के. (1969) *सत्य की आवाज,* खण्ड–5, (प्र.सं. श्रीमन नारायण), शांतिलाल एच. शाह, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 281।
8. Majumdar, W.R. (2009) Speeches and writings of Mahatama Gandhi (4th Edn.), Manglam Publication, Kerla, p. 336-44.

****